पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
भेदज्ञान भजनावली आध्यात्मिक भजन-८९,९०
रक्षाबंधन दिन, राजकोट
तारीख. १९९१-९२, प्रवचन LA ३६९

मुमुक्षु: आज सुबह को यह लेते थे ना? वह तो मुनि (का) याद आ गया चेतना सर्वस्व। सर्वस्व तो अंदर में है, यह बंधु अंदर में है। वीरा अंदर में है। आत्मा वीरा है। इस वीरा से आज्ञा माँगता है कि हे वीरा! इस शरीर के वीरा। ऐसा कहता है कि इस आत्मा को भेदज्ञान ज्योति का उदय हुआ है। इसलिए यह आत्मा आज अपने अनादि वीरा के पास, बंधु के पास जाता है। इस प्रकार से आज सुबह भक्ति ली थी। बहुत सुंदर! आत्मा ही वीरा है आत्मा ही बहन है। स्वानुभूति रूपी बहन है न। आत्मा ही पत्नि है, आत्मा ही पति है।

पू. लालचंदभाई: हाँ बराबर है, पूरा कुटुंब इसमें (आत्मा में) है, कुटुंब इसमें है।

मुमुक्षु: यह सब लिया है कि अनादि जननी के पास जा रहा हूँ। अनादि जनक के पास जा रहा हूँ।

पू. लालचंदभाई: बराबर!

मुमुक्षु: आहाहा! इस प्रकार है ... न? अर्थात् इसलिए मैंने कहा क्योंकि यह सबको लागू पड़ता है। सबका भाई अंदर ही है।

पू. लालचंदभाई: बराबर!

(भेदज्ञान भजनावली आध्यात्मिक भजन-८९ बहन भाई से)
भैया मेरे स्वानुभूति प्रकटाना (३)
भैया मेरे पाया है अवसर सुहाना..... सुहाना..... (२)
भैया मेरे स्वानुभूति प्रकटाना..... भैया मेरे
चिंतामणि सा जिनवृष पाया, फिर भी सेवे विषय कषाया ..... (२)
अब कुछ तो विवेक कराना.....कराना.....
भैया मेरे अब कुछ तो विवेक कराना.....कराना.....
भैया मेरे स्वानुभूति प्रकटाना ..... भैया मेरे
चेतो अवसर व्यर्थ न खोना, तत्त्वों का सत् निर्णय करना ..... (२)
भेदविज्ञान जगाना..... जगाना
भैया मेरे..... भेदविज्ञान जगाना..... जगाना
भैया मेरे स्वानुभूति प्रकटाना ..... भैया मेरे
कर्म राग पर्याय से न्यारा, ज्ञायक प्रभु अनुपम सुखकारा ..... (२)
निज में ही दृष्टि जमाना..... जमाना.....

भैया मेरे निज में ही दृष्टि जमाना ..... जमाना .....
भैया मेरे स्वानुभूति प्रकटाना ..... भैया मेरे
आत्मभाव ही मुनिसंघ है, मोहादिक को ही बलि जानो ..... (२)
देवे दुःख मनमाना ..... मनमाना .....
भैया मेरे देवे दुःख मनमाना..... मनमाना.....
भैया मेरे स्वानुभूति प्रकटाना ..... भैया मेरे
मोहादिक को दूर भगाओ सम्यग्दर्शन को प्रगटाओ ..... (२)
श्रीगुरु हैं विष्णु समाना ..... समाना....
भैया मेरे श्रीगुरु हैं विष्णु समाना ..... समाना ....
भैया मेरे स्वानुभूति प्रकटाना ..... भैया मेरे
सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित हो, सम्यक् चारित्र पूर्ण करन को ..... (२)
मुनिपद सहज धराना.... धराना...
भैया मेरे मुनिपद सहज धराना.... धराना...
भैया मेरे स्वानुभूति प्रकटाना ..... भैया मेरे
बाह्य उपसर्ग नहीं दुःखदाता, व्यर्थ विकल्पों से दुःख पाता ..... (२)
निर्विकल्प हो जाना..... हो जाना...
भैया मेरे निर्विकल्प हो जाना..... हो जाना...
भैया मेरे स्वानुभूति प्रगटाना ..... भैया मेरे
जब तुम निज में ही ठहरोगे, कर्मादिक खुद ही भग जावें ..... (२)
स्वयं सिद्ध पद पाना..... हाँ पाना...
भैया मेरे स्वयं सिद्ध पद पाना..... हाँ पाना...
भैया मेरे स्वानुभूति प्रकटाना ..... भैया मेरे
पाया है अवसर सुहाना..... सुहाना.....
भैया मेरे स्वानुभूति प्रकटाना..... (२)

पू. लालचंदभाई: बहन राखी बांधती है यह। स्वानुभूति प्रगट करो वह हमारी राखी है।

मुमुक्षु: और भैया भी समझदार है। भैया भी समझदार है। वह बहन को कहता है। आगे भाई बहन को कहता है।

पू. लालचंदभाई: ऐसा? पहले बहन ने भाई से कहा?

मुमुक्षु:- हाँ! पहले बहन भाई से कहती है, फिर भाई बहन से कहता है।

पू. लालचंदभाई: वह अच्छा। हाँ **बहन से** सही है! **बहन से**, **बहन से** कहता है।

मुमुक्षु: बहन ऐसा कहती है न कि मेरी रक्षा करना। तो भाई ऐसा कहता है कैसी रक्षा? इसप्रकार।

पू. लालचंदभाई: कैसी रक्षा? हाँ ठीक! हाँ ऐसा। बहुत सुंदर है।

(भेदज्ञान भजनावली आध्यात्मिक भजन-९० रक्षाबंधन, भाई बहन से)

कैसा बंधन? कैसी रक्षा? व्यर्थ विकल्प करे रे।

हूँ त्रिकाल निर्बंध सुरक्षित अंतर्दृष्टि लखे रे॥

पू. लालचंदभाई: आहाहा! बहुत सुंदर!

मुमुक्षु: मैं तो त्रिकाल निर्बंध ही हूँ। सुरक्षित ही हूँ। फिर बंधन और रक्षा ये विकल्प कैसे करूँ? नहीं करूँ।

कैसा बंधन? कैसी रक्षा? व्यर्थ विकल्प करे रे।

हूँ त्रिकाल निर्बंध सुरक्षित अंतर्दृष्टि लखे रे॥

दो द्रव्यों की सत्ता न्यारी कैसे बंधन होवे?

पू. लालचंदभाई: बहुत सुंदर!

मुमुक्षु: सत्ता तो न्यारी, बंधन किसप्रकार हो?

पू. लालचंदभाई: फिर कहाँ से बंधन हो?

एक क्षेत्र अवगाही होने पर भी एक नहीं है॥

निमित्त-नैमित्तिक दिखने पर भी कर्ताकर्म नहीं है।

पू. लालचंदभाई: यह ही भूल हुई है। जीव की भूल निमित्त-नैमित्तिक संबंध देखकर कर्ता-कर्म मान लिया।

मुमुक्षु: निमित्त-नैमित्तिक होने पर भी कर्ता-कर्म नहीं है।

पू. लालचंदभाई: इसीप्रकार ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार होने पर भी ज्ञाता-ज्ञेय नहीं है।

मुमुक्षु: ज्ञाता-ज्ञेय नहीं है। बस! बहुत सुंदर! व्यवहार होने पर भी यह निश्चय नहीं है। ऐसा नहीं है।

पू. लालचंदभाई: जैसे निमित्त-नैमित्तिक संबंध होने पर भी कर्ता-कर्म का अभाव है। ऐसे ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार होने पर भी ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध ... नहीं है। एक न्याय में आया है, अभी ही पढ़ा वह, थोड़े समय पहले, परंतु बहुत घूँटा हमने। यह निमित्त-नैमित्तिक संबंध तो तुम्हें दिखेगा तथापि कर्ता-कर्म की भ्रांति होती है, सुनना, भ्रांति हो गई है। ऐसे ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार तो है, टालने से टले ऐसा नहीं है, व्यवहार तो है। परंतु जैसे निमित्त-नैमित्तिक संबंध देखकर कर्ता-कर्म की भ्रांति हो गई, ऐसे ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध देखकर उसके साथ एकता हो गई। वह मानो ज्ञेय है और मैं उसका ज्ञाता हूँ, ज्ञेय-ज्ञायक का संबंध, उसमें एकता हो गई।

मुमुक्षु: सही बात है एकदम।

पू. लालचंदभाई: निमित्त, सुनना! निमित्त-नैमित्तिक संबंध जगत के सभी पदार्थों के बीच चलता ही रहता है। वह कोई कम होनेवाला नहीं है और समाप्त होनेवाला नहीं है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध किसी काल में समाप्त होनेवाला नहीं है। दो द्रव्यों की पर्याय के बीच सबंध होकर निमित्त-नैमित्तिक संबंधरूप से तो स्वतंत्रपने परिणमता है। उपादान और निमित्त दोनों स्वतंत्रपने परिणमते हैं। परंतु निमित्त-नैमित्तिक संबंध देखकर, इसने इसका किया, और इसने इसका किया, इस प्रकार भ्रांति हुई

है। कुछ बात में माल नहीं है हों! एक पैसा भी सच्चा नहीं है उसमें। ऐसे ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार छोड़ दे। मैं ज्ञाता और यह ज्ञेय, मैं पर को जाननेवाला हूँ, मैं पर का जाननेवाला हूँ ऐसी भ्रांति हो गई है।

मुमुक्षु: ऐसी भ्रांति हो गई।

पू. लालचंदभाई: उसमें लिखते हैं कि ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार रहा है, शब्द है व्यवहार तो रहा है। जैसे निमित्त-नैमित्तिक संबंध जगत के पदार्थों (के बीच) हम टाल नहीं सकते। हम अपना कर देवें परंतु जगत को हम कैसे सुधार सकते हैं? वह हम कैसे टाल सकते हैं? ऐसा कहते हैं इस प्रकार न्याय में कि ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध रहा है। अब वह जो ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध रहा है ऐसी ही बात ३१ गाथा में है, समझ गये? है संबंध। और सेटिका में भी वह संबंध लिया, व्यवहार। परंतु वह व्यवहार सच्चा लगा कि आत्मा पर को जानता है (वह नाश हो गया आत्मा का)।

मुमुक्षु: वह नाश हो गया आत्मा का।

पू. लालचंदभाई: ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार संबंध देखकर यदि वह निश्चय भासित हुआ, ऐसे ही निमित्त-नैमित्तिक संबंध देखकर यदि कर्ता-कर्म भास हुआ, तो अज्ञान है, उस ही प्रकार। और यह जो है, ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार, वह भी अनिवार्य है, वह किसी भी संयोग में तुम ज्ञाता-ज्ञेय के व्यवहार को टाल नहीं सकते, परंतु मिथ्याबुद्धि टाल सकते हो! तुम पर के प्रतिभास को कैसे रोक सकते हो? परंतु प्रतिभास देखकर मैं पर को जानता हूँ, वह टाल सकते हो। कि 'नहीं, वह मुझे जानने में आता ही नहीं'। परंतु इसका प्रतिभास अवश्य होता है, प्रतिभास टालना नहीं है, समझ गये? परंतु मुझे यह जानने में नहीं आता, और जाननहार जानने में आता है। अंदर में आ जाता है। ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार जानकर जैसे निश्चय हो गया, ऐसे निमित्त-नैमित्तिक संबंध देखकर कर्ता-कर्म की भ्रांति हुई। ऐसे इसमें इसे ज्ञाता-ज्ञेय को देखकर 'मैं ज्ञेय को जानता हूँ', वह भ्रांति हुई।

वह जो लिखा है २७१ (कलश) में, वह सत्य है। भ्रांति होने का भी कारण है, कर्ता-कर्म की भ्रांति होने का भी कारण है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध से उसे कर्ता-कर्म की भ्रांति होती है। ऐसे ही ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार है तो भ्रांति होती है। यदि ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार ही न हो...

मुमुक्षु: तो भ्रांति कैसे हो? बिल्कुल सही बात है।

पू. लालचंदभाई: चलो! यह तो निमित्त-नैमित्तिक आया न, इसलिए मैंने उसमें, ज्ञाता-ज्ञेय में घटित किया।

भेदज्ञान दृष्टि से चेतन सबसे भिन्न दिखे रे॥१॥

पू. लालचंदभाई: सबसे भिन्न!

भेदज्ञान दृष्टि से चेतन सबसे भिन्न दिखे रे॥१॥

-हूँ त्रिकाल निर्बंध सुरक्षित अंतर्दृष्टि लखे रे॥-॥

अहंकार ममकार धार पर में रागादिक ठाने।

ये ही व्यवहारिक बंधन पर्याय मात्र में जाने ॥

मुमुक्षु: अर्थात् ऐसा कहते हैं वह बंधन तो बंधन नहीं है, है ही नहीं। व्यवहारिक बंधन यह है और वह भी पर्याय मात्र में है। बहुत सुंदर!

पू. लालचंदभाई: फिर से। अहंकार का!

अहंकार ममकार धार पर में रागादिक ठाने।
ये ही व्यवहारिक बंधन पर्याय मात्र में जाने॥

पू. लालचंदभाई: ऐसा व्यवहारिक बंध भी पर्याय में होता है, द्रव्य में तो होता ही नहीं।

मुमुक्षु: होता ही नहीं। बहुत सुंदर!

पू. लालचंदभाई: बहुत सुंदर! द्रव्य को भिन्न ही कर दिया पूरा।

मुमुक्षु: एकदम।

पर पर्याय से भी है न्यारा ज्ञानमात्र शुद्धातम्।
समयसार अविकारी अनुपम, है शाश्वत परमातम्॥
शुद्धनय द्वारा श्रीगुरु जिसका किंचित् भाव कहें रे॥२॥
हूँ त्रिकाल निर्बंध सुरक्षित अंतर्दृष्टि लखे रे॥

पू. लालचंदभाई: गुरु शुद्धात्मा का स्वरूप किंचित् भाव कहते हैं। बाकी तो कहा नहीं जा सकता। शुद्धनय के द्वारा इतना कहा जा सकता है।

मुमुक्षु: बहुत सुंदर! एकदम सुंदर!

पू. लालचंदभाई: देखा सुंदर है! **शुद्धनय द्वारा श्रीगुरु जिसका किंचित् भाव कहें रे।**

शुद्धनय द्वारा थोड़ा कहा जाता है, बाकी तो अनुभवगम्य है। शुद्धनयगम्य नहीं है, ज्ञानगम्य है। शुद्धनय द्वारा कहा जाता है, शुद्धनय द्वारा अनुभव में आता है ऐसा नहीं लिखा है।

मुमुक्षु: थोड़ा कहा जाता है, थोड़ा कहा जाता है।

पू. लालचंदभाई: विकल्पात्मक शुद्धनय।

मुमुक्षु: बहुत सुंदर है हों!

पू. लालचंदभाई: बहुत सुंदर!

पर पर्याय से भी है न्यारा ज्ञानमात्र शुद्धातम्।
समयसार अविकारी अनुपम, है शाश्वत परमातम्॥
शुद्धनय द्वारा श्रीगुरु जिसका किंचित् भाव कहें रे॥२॥

पू. लालचंदभाई: देखो व्यवहार को निकाल दिया पूरा, क्योंकि व्यवहार के द्वारा शुद्धात्मा का स्वरूप कहा जा सकता नहीं, और वह कहता ही नहीं, उसकी ताकत ही नहीं है! व्यवहारनय मिथ्या प्ररूपण करता है। निश्चय, शुद्धनय ही सच्चा प्ररूपण करता है। **अभेद और अनुपचार जिसका लक्षण है वह** (देवसेन आचार्य कृत नयचक्र, पेज ३१)।

जिसका जीवन-मरण नहीं है नहीं वेदना कोई।
है अभेद स्वगुप्त सदा ही असुरक्षा नहीं कोई॥
जिसका जीवन-मरण नहीं है नहीं वेदना कोई।
है अभेद स्वगुप्त सदा ही असुरक्षा नहीं कोई॥
आत्मन् तेरा अक्षुण वैभव घटे ना बढ़े कदा ही।

एकरूप चैतन्य रत्नाकर रहता अचल सदा ही॥
अंतर सुखसागर लहरावे फिर क्यों दुःख सहे रे। ॥३॥

पू. लालचंदभाई: आहाहा! बढ़िया बात है।

मुमुक्षु: एकांत सुख सागर है।

अंतर सुखसागर लहरावे फिर क्यों दुःख सहे रे? ॥३॥
हूँ त्रिकाल निर्बंध सुरक्षित अंतर्दृष्टि लखे रे॥
तेरे में कुछ भी नहीं होता, पर्याय है क्रमवर्ती।
सदा निरंतर होती रहती रहट घड़ी ज्यों चलती॥

मुमुक्षु: वह रहट (टिक-टिक) घड़ी नहीं चलती? रहट चलती है न, उस प्रकार। और वापस,

तेरे में कुछ भी नहीं होता, पर्याय है क्रमवर्ती।
सदा निरंतर होती रहती रहट घड़ी ज्यों चलती॥

पू. लालचंदभाई: तेरे में कुछ होता नहीं। पर्याय में होता है सब और तू ऐसा मानता है कि मेरे में होता है, वह तेरी भूल है। बहुत सुंदर भजन है हों! बहुत सुंदर भजन है! इसलिए मुझे तो .. आहाहा! समयसार भर दिया है। पर्याय में सब होता है, स्वीकार किया परंतु आत्मा में तो (कुछ होता नहीं)।

मुमुक्षु: मेरे में कुछ होता नहीं।

पू. लालचंदभाई: ऐसा तू जान। पर्याय में होता देखकर मेरे में होता है, वह भूल हो गई है। आहाहा! पर्याय पर को जानती है ऐसा देखकर भ्रांति हुई है कि मैं जानता हूँ। अपने को तो उसमें ही घटित करना।

मुमुक्षु: हाँ! उसमें ही। सही है। वह आया है न, २५८ कलश में वही आया है। ज्ञान की पर्याय पर को जानती है और वह पर्याय मात्र को ही अपनी वस्तु मानता है।

पू. लालचंदभाई: वस्तु मानता है। होता है सब यह नाटक पर्याय में, मानता है मेरे में होता है। करने का, निमित्त-नैमित्तिक, जानने का, सब पर्याय में खेल होता है। यह वास्तव में गुरुदेव ना मिले होते तो यह द्रव्य-पर्याय के बीच का भेदज्ञान बाहर ना आता। द्रव्य से पर्याय सर्वथा भिन्न है, बहन, समर्थ पुरुष के सिवा कहा नहीं जा सकता। शास्त्र में था परंतु कह सकता नहीं। कोई कह सकता नहीं, किसी की ताकत नहीं है। पर्याय द्रव्य को स्पर्शती नहीं। नवतत्त्व सर्वथा भिन्न है। कौन कहे? किसकी ताकत है? आहाहा! एक कुंदकुंद भगवान के सिवा कोई कह सकता नहीं कि आत्मा अपने को जानना छोड़ता नहीं और .. जानकर पर को **ग्रहण करने जाता नहीं** (समयसार गाथा ३७३-३८२)। एक कुंदकुंद की देन है यह। चलो!

अनहोनी होवे नहीं कबहूँ, होनी ही होती है।
मिले पंचसमवाय स्वयं ही, कभी नहीं टलती है॥

पू. लालचंदभाई: होने योग्य हुआ करता है सब।

मुमुक्षु: न होने योग्य कभी होता नहीं। बराबर!

छोड़ सभी चिंता आकुलता पर्याय दृष्टि तजे रे॥४॥

हूँ त्रिकाल निर्बंध सुरक्षित अंतर्दृष्टि लखे रे॥
है पर्यायों पर दृष्टि जब, तब सुख कैसे पावे।
होते रहते भाव विकारी, भव में ही भरमावे॥

मुमुक्षु:- पर्याय के ऊपर नजर गई तो?

पू. लालचंदभाई: समाप्त!

मुमुक्षु: पर्याय में विकारी ही भाव होंगे।

होनहार पर उनको छोड़ो, द्रव्य-दृष्टि प्रगटावे!

मुमुक्षु: होने योग्य होता है, जाननहार जनाता है।

पू. लालचंदभाई: वाह! वाह! होने योग्य होता है, जाननहार जनाता है।

मुमुक्षु: उसे छोड़कर, **पर उनको छोड़ो** ।

पू. लालचंदभाई: होने योग्य होता है उसके ऊपर भी लक्ष रखो मत। ऐसा लिखा, हों!

मुमुक्षु: **होनहार पर उनको छोड़ो ,**

पू. लालचंदभाई: **छोड़ो** , होने योग्य होता है, छोड़ दे उसके ऊपर, उसके सामने क्यों देखता है? जहाँ कर्ताबुद्धि छूटी वहाँ अकर्ता में आ गया!

मुमुक्षु: बहुत सुंदर! बहुत बढ़िया।

पू. लालचंदभाई: बहुत सुंदर! बहुत बढ़िया!

होनहार पर उनको छोड़, द्रव्य-दृष्टि प्रगटावे!
पर्यायें भी निर्मल होवें आनंद उर ना समावे॥
ध्यान रहे स्वच्छंद न होना श्री गुरु यही कहें रे॥५॥
हूँ त्रिकाल निर्बंध सुरक्षित अंतर्दृष्टि लखे रे॥
रक्षाबंधन पर्व यही मंगल संदेश सुनावे!
बाह्य प्रसंगों से निरपेक्षित ज्ञानी ध्यान लगावें॥

पू. लालचंदभाई: कुछ संबंध नहीं है, हों, पर के साथ कुछ संबंध नहीं है।

मुमुक्षु: बिल्कुल नहीं हों!

पू. लालचंदभाई: निरपेक्ष शब्द ऐसा वजनी है, सब छूट जाये। सब निरपेक्ष ही है, सत् है न! सत् होता है वह निरपेक्ष ही होता है।

रक्षाबंधन पर्व यही मंगल संदेश सुनावे!
बाह्य प्रसंगों से निरपेक्षित ज्ञानी ध्यान लगावे॥
मैं अविनाशी परमानंदमय दृढ़ प्रतीति उर धारो।
उसे नहीं किंचित् भय होवे मोहादिक रिपु जारे॥
ऐसा मंगल पर्व मनावे शिवपद सहज लहे रे॥६॥
हूँ त्रिकाल निर्बंध सुरक्षित अंतर्दृष्टि लखे रे॥

मुमुक्षु: अब बहन को कहता है।

बहिन! न मेरी ओर लखो अब अपनी ओर निहारो।
स्त्रीरूप नहीं है तेरा चेतनरूप संभारो॥

पू. लालचंदभाई: भाई बहन से कहता है।

मंगलमय प्रभुता मत विसरो नहीं दीनता धारो।
ये विशुद्ध बंधन भी तोड़ो मुक्तिमार्ग पद धारो॥

पू. लालचंदभाई: वाह! वाह! बहुत सुंदर है। दोनों का संवाद अच्छा है।

कोई भय न विकल्प सतावे, निज आश्रय जु गहे रे॥७॥

पू. लालचंदभाई: अपना आश्रय करे तो कोई विकल्प ही उत्पन्न होता नहीं।

हूँ त्रिकाल निर्बंध सुरक्षित अंतर्दृष्टि लखे रे॥
कैसा बंधन? कैसी रक्षा? व्यर्थ विकल्प करे रे।
हूँ त्रिकाल निर्बंध सुरक्षित अंतर्दृष्टि लखे रे॥

पू. लालचंदभाई: बहुत सुंदर। दोनों भजन अच्छे, हों! बहुत अच्छे। अकेला तत्त्व भरा है। पर्याय में सब होता है, द्रव्य में होता नहीं। फिर कहते हैं, गुरु चेतते हैं, हों! स्वच्छंदी मत होना, वह भी कह दिया, ऐसा। पर्याय में होता है, ऐसा रखना, मेरे में होता नहीं वह जानना, इसप्रकार।

मेरे (द्रव्य) में होता नहीं ऐसा जाने। और पर्याय में भी राग होता नहीं, वह रहने देना। ऐसा नहीं! वह तो भेद ... व्यवस्थित है। आत्मार्थी जीव कहीं भटक जाये ऐसा नहीं है। परंतु फिर भी वे चेताते हैं सबको, ~~એ સાચી વાત છે કારણ કે આ તો સમષ્ટિગત છે ને, વ્યક્તિગત નથી.~~ वह सही बात है क्योंकि यह तो समष्टिगत है न, व्यक्तिगत नहीं है।